

नाटक इंडिया कम्पनी

अमित और जयश्री



एक मोटे-से पेड़ के सूखे तने पर, दोनों तरफ पैर लटकाए, बच्चे लाइन से बैठे हैं। बच्चों के मुँह पर सफेदी पुती है, सिर पर ओरिगेमी से बनी टोपी है - वे अँग्रेज़ सैनिक बने हैं। सभी के हाथ में लकड़ी है जिसे वे नाव के चप्पू की तरह चला रहे हैं। वास्को ड गामा लकड़े पर खड़ा होकर कागज़ की दूरबीन से देख रहा है और खुशी से चिल्लाता है - हम भारत पहुँच गए! ऐसे शुरू होता था, 15 अगस्त को पहली बार दिखाया गया 'अँग्रेज़िया' नाटक, जिसे आधारशिला के बच्चों की नाटक टीम 'नाटक इंडिया कम्पनी' ने तैयार किया था।

नाटक इंडिया कम्पनी की शुरुआत

नाटक इंडिया कम्पनी का जन्म

पाँचवीं कक्षा के बच्चों को इतिहास पढ़ाने से हुआ। पाँचवीं कक्षा में यूरोपीय लोगों के भारत आने के बारे में एक पाठ था। वास्को ड गामा से शुरू होकर, व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी का आना, फिर अँग्रेज़ रानी का राज और दूसरे पाठ में स्वतंत्रता आन्दोलन। बहुत सारी घटनाएँ और बहुत सारे नाम थे इन दो पाठों में। बच्चों ने इनमें से गाँधी के अलावा और कोई नाम नहीं सुना था। मुझे अभी तक याद है कि मैडम कामा का नाम हमने भी पहली बार उन पाठों में पढ़ा था।

इसी अड़चन को दूर करने के लिए यह आइडिया आया कि क्यों न इन पाठों पर आधारित एक नाटक बना दिया जाए। 15 अगस्त भी आने वाला था तो सोचा कि इस नाटक को

स्वतंत्रता दिवस पर दिखा भी दिया जाएगा।

अब हमें लगा कि नाटक की टीम का एक नाम भी होना चाहिए। बच्चों से पूछा कि क्या नाम रखें। चूँकि पाठ की वजह से 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' नाम बच्चों के मुँह पर चढ़ गया था तो बातों-बातों में 'नाटक इंडिया कम्पनी' नाम का सुझाव आ गया। अच्छा ही तो था। यह कम्पनी देश में चल रहे नाटक को मंच पर दिखाएगी। इस तरह *आधारशिला* में हमारे घर के आंगन में चल रही बड़े बच्चों की इतिहास की क्लास में नाटक इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई। इसका पहला नाटक बना - भारत में अँग्रेजों का आना, जमना और उन्हें कैसे भगाया गया। नाटक का नाम शायद था ही नहीं। अँग्रेजिया वाला नाटक कहते थे इसे। क्या बच्चों ने पहले कभी नाटक किया था? नहीं। क्या हमने कभी नाटक किया था या बनवाया था? नहीं! मज़ा आएगा, नया काम करने में। हाँ, हम दोनों ने नाटक देखे ज़रूर थे, और वो भी बहुत बेहतरीन किस्म के।

रोज़मर्रा की पढ़ाई में नया उत्साह

15 अगस्त को नाटक का मंचन किया गया। बच्चों को बहुत मज़ा आया। पहली बार वे ऐसा कुछ कर और देख रहे थे। 15 अगस्त के दिन बच्चों के माता-पिता भी आते थे। वे भी इसे देखकर गद-गद हो गए।

किसी ने बताया कि उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनके बच्चे मंच पर चढ़कर कुछ बोलेंगे। इस पूरे इलाके में शायद यह पहली बार था जब आदिवासी बच्चों ने मंच से कुछ बोला, और आदिवासी बच्चों द्वारा नाटक करना तो पहली बार ही हुआ था। बच्चों के साथ-साथ हमें भी बहुत मज़ा आया और पढ़ाने जैसे रोज़मर्रा के काम को मज़ेदार बनाने का एक नया तरीका भी मिल गया।

ऐसी गतिविधियाँ बच्चों के लिए हमेशा महत्वपूर्ण समझी जाती हैं लेकिन हमें यह महसूस हुआ कि ये शिक्षकों के लिए भी उतनी ही ज़रूरी होती हैं। पढ़ाने का काम ऐसा है जिसमें आपको हर रोज़ क्लास में जाना है, बच्चों को रोज़ कुछ-न-कुछ पढ़ाना है और यदि आप तथाकथित वैकल्पिक स्कूल में हैं तो आपको रोज़ ही अपनी सृजनात्मकता का परिचय भी देना होता है। पढ़ाने के नए तरीके लगातार सोचते रहना पड़ते हैं। अगले साल फिर वही विषय उतनी ही लगन से पढ़ाना है क्योंकि बच्चे तो नए होंगे, वे तो पहली बार इस सबके बारे में सुन रहे होंगे। इस साल-दर-साल चलने वाले रूटीन से शिक्षकों का बोर होना स्वाभाविक है। नाटक मंचन के कारण *आधारशिला* के शिक्षकों को भी पढ़ाने से थोड़ी राहत मिल जाती थी और कुछ मज़ेदार अनुभव भी मिल जाते थे। हालाँकि, बाद में एक्स्ट्रा क्लास

लगाकर छूटी हुई पढ़ाई भी पूरी करवानी पड़ती थी।

नाटक इंडिया कम्पनी की शुरुआत तो इतिहास के पाठ सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें समझाने के लिए हुई थी लेकिन आगे बढ़ते हुए इसका स्वरूप कुछ बदल गया। बहुत सोचे-समझे तरीके से नहीं लेकिन *आधारशिला* को शुरू करने के पीछे जो मूलभूत बातें थीं, उनके चलते हम लोग नए मौके पकड़ लेते थे।

सामाजिक बदलाव का माध्यम

आधारशिला शिक्षण केन्द्र, समाज से जुड़ा हुआ स्कूल था। *आधारशिला* की पूरी कल्पना और उपज ही सामाजिक बदलाव के काम के एक हिस्से के रूप में हुई थी। इसकी टैग लाइन थी - एक नए समाज की मज़बूत नींव - आधारशिला। इसलिए इसे शुरू करने के पहले से ही यह आग्रह था कि शिक्षा का जो भी काम हो, वह एक ऐसे संगठन के माध्यम से हो जो सामाजिक परिवर्तन के काम में लगा हो। जो माँ-बाप समाज को बदलने की सोच से प्रेरित होंगे, उनके बच्चे भी जब स्कूल में उन्हीं विचारों को सुनेंगे तो उन्हीं ये विचार अधिक स्वीकार्य होंगे।

'अँग्रेज़िया' नाटक में सबको बहुत मज़ा आया। करने वालों को, देखने वालों को और हमें भी। जब भी ऐसी सफलता मिलती तो हमें लगता कि बस, यही काम करते रहें। इसके

अगले ही साल हमारे क्षेत्र के एक गाँव खुटवाड़ी में आदिवासी मुक्ति संगठन के एक सम्मेलन में हमने नाटक दिखाने के लिए कहा। संगठन के लोग भी खुश हो गए क्योंकि सम्मेलनों में अधिकतर रूखे-सूखे भाषण ही होते हैं। हमने इस इलाके की शिक्षा व्यवस्था के बारे में एक नाटक बनाया। नाटक में बताया गया कि कैसे बहुत आशाओं के साथ माता-पिता बच्चों को स्कूल भेजते हैं लेकिन पढ़ाई के निम्न स्तर के कारण उनकी ज़िन्दगी खराब हो जाती है और वे न घर के रहते हैं, न घाट के।

यह नाटक स्थानीय आदिवासी भाषा में था और स्कूलों व पढ़ाई को लेकर घरों में जो बातचीत होती थी, उन्हीं बातों को डायलॉग का रूप दे दिया गया था। इस क्षेत्र के लोगों ने भी पहली बार नाटक देखा था। छोटे-छोटे बच्चों को डायलॉग बोलते देखकर सब हतप्रभ थे। *आधारशिला* की तो अच्छी धाक जम गई। सम्मेलन के मुख्य अतिथि, उस समय के सांसद श्री दिलीप सिंह भूरिया थे। उन्होंने भी नाटक के उद्धरण देकर ही अपना भाषण दिया। अन्य वक्ताओं ने भी नाटक का ज़िक्र किया। इसके बाद इपटा के राज्य स्तरीय सम्मेलन के दौरान आनंदमोहन माथुर नाट्यग्रह, इन्दौर में इसी नाटक के हिन्दी संशोधित रूप का मंचन हुआ। पूरे नाटक में लोगों ने खूब ठहाके लगाए और अन्त में नाटक को *स्टैंडिंग*



ओवेशन मिला। किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि उन्हें हबीब तनवीर के नाटकों की याद आ गई। बाद में, इसे फोरम फॉर राइट टू एजुकेशन के राष्ट्रीय सम्मेलन में भोपाल में भी दिखाया गया।

वैश्विक मंच पर आदिवासी बच्चे

सामाजिक मुद्दों पर बात करने के लिए नाटक बहुत ही ज़बरदस्त माध्यम हैं, यह तो पता ही था लेकिन इस प्रस्तुति के बाद यह धारणा और पक्की हो गई। अगला मौका आया सन् 2004 में हुए वर्ल्ड सोशल फोरम (WSF) में जो बॉम्बे में होने वाला था। हमने सोचा कि क्यों न हम लोग वहाँ जाकर नाटक दिखाएँ। सही अन्दाज़ा लगाया, हम लोग बैठे-बैठे कुछ भी सोच लेते थे और फिर उसे करने में जुट जाते थे! कहीं-न-कहीं मन में यह

बात रहती ही थी कि आदिवासी बच्चों की प्रतिभा को दुनिया के सामने कैसे लाएँ। पूरी दुनिया से लोग आएँगे। उनसे मिलना, उनके बारे में जानना और फिर बम्बई देखना। ऐसा मौका कैसे चूक सकते थे। बच्चों और शिक्षकों से इस पर बात की तो वे भी बहुत खुश हो गए।

इस नाटक में करीब 30-35 बच्चे थे। जब तक इसकी तैयारी चलती रही, तब तक स्कूल के सभी बच्चे नाटक से सम्बन्धित ही कुछ-न-कुछ करते रहे। शिक्षक छोटे बच्चों को बड़ी मुश्किल से कक्षाओं में बिठा पा रहे थे। इसका एक ही इलाज था कि वे भी नाटक बनाएँ। इसलिए शिक्षकों ने उनसे भी कुछ लोक कहानियों पर नाटक करवा दिए। इसमें बच्चे खुद को अलग-अलग भूमिकाओं में डालकर बात करते रहते थे। एक

नाटक में बच्चों ने अरण्डी के बड़े पत्ते को डण्डल समेत लेकर, उसकी छतरी बना ली थी। इस प्रक्रिया में बच्चों और शिक्षकों, दोनों को उनकी सृजनात्मकता उभारने व प्रदर्शित करने का मौका मिला।

उस समय हमारे व अन्य देशों में उदारीकरण - निजीकरण - वैश्वीकरण की नीतियों का बोलबाला था। हमने सोचा कि इस उभरती वैश्विक अर्थव्यवस्था के गरीब वर्ग पर हो रहे असर के बारे में ही नाटक किया जाए। गाँव की स्थिति भी दिखेगी और इसका विश्लेषण भी। बम्बई जाना और इतने बड़े मंच पर नाटक दिखाना, बच्चों और हम सब के लिए एक बहुत ही रोमांचक अनुभव था। वर्ल्ड सोशल फोरम के लिए बच्चों को इटालवी भाषा का एक मशहूर प्रतिरोध गीत - 'उना मतीना' सिखाया गया, साथ ही, एक पुर्तगाली गीत भी सिखाया।

बम्बई जीप से जाना था। नाटक तो बन गया लेकिन जीप का किराया और रास्ते के खर्च के लिए पैसे कहाँ से आएँगे? अचानक पता चला कि

वर्ल्ड सोशल फोरम में आने वाले कुछ लोग पहले से भारत आ रहे हैं और कोई संस्था या लोग, उन्हें भारत में चल रहे गाँव स्तर के आन्दोलन क्षेत्रों में दौरा करवा रहे हैं। हमें तुरन्त सूझा कि इनसे हमारा किराया निकल सकता है। हमने उन्हें *आधारशिला* आने का निमंत्रण दिया। आदिवासी बच्चों का एक ऐसा स्कूल जो सामाजिक बदलाव के लिए शिक्षा की भूमिका के बारे में सोच रहा है - इस बात से प्रभावित होकर उन लोगों ने आधारशिला को भी अपने रूट में जोड़ लिया। बच्चों ने दो जीपों के भाड़े के पैसे इकट्ठे करने के लिए पुराने कपड़ों के थैले, ग्रीटिंग कार्ड, रूमाल, ऊन के हैण्ड बैण्ड्स, जूट की सुतली के छोटे पाउच आदि सामान बनाए। जिस दिन उन्हें आना था, उस दिन *आधारशिला* में हाट की तरह जगह-जगह पर स्टॉल लगाए गए जिनमें बच्चों द्वारा सालभर में किया गया काम दर्शाया गया और साथ ही, उनके द्वारा बनाया गया हस्तकला सामान भी प्रदर्शित किया गया।



लगभग तीस मेहमानों के चार-पाँच समूह बनाए गए और बच्चे इन सभी समूहों को प्रदर्शनी दिखाने और स्कूल विजित कराने के लिए ले गए। महुए के नीचे आखिरी स्टॉल में एक चार्ट लगाया गया था जिसमें साकड़ से बम्बई तक के रास्ते का नक्शा बना था और दूरी लिखी हुई थी। उसके नीचे लिखा था कि अभी हमारे पास कितने किलोमीटर तक के लिए पैसे हैं। जैसा हमने सोचा था, वैसा ही हुआ - प्रदर्शनी देखने के बाद स्वतः ही कुछ लोगों ने पूछा कि क्या वे बचे हुए किलोमीटर की भरपाई कर सकते हैं? क्यों नहीं! देखते-ही-देखते पाँच सौ किलोमीटर के पैसे इकट्ठे हो गए।

विदेशियों के साथ बच्चों ने 'उना मतीना' गाया। उन्होंने भी बच्चों को अमरीका में परमाणु ऊर्जा के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में गाया गया एक गीत सिखाया जिसे बच्चों की एक कविता से रूपान्तरित किया गया था। सबने इसे नाचते हुए गाया। इस तरह हम लोग दो खटारा जीपों में बैठकर, रास्ते में पेट्रोल पम्प पर और नासिक में जहाँ रात रुके थे, वहाँ नाटक करते हुए बम्बई पहुँच गए। विशाल मंच पर नाटक दिखाया और गीत गाए। बच्चों को यह आयोजन, उनके इलाके में होली के पहले लगने वाले भगोरिया मेले की तरह लगा। वंदू ने कहा कि ऐसे तो नई दुनिया नहीं बन सकेगी!! दूसरी ओर WSF के

वैकल्पिक आयोजन ने उन्हें अधिक प्रभावित किया जहाँ लोग एक पण्डाल में बैठकर मंच पर चल रहे कार्यक्रम को देख रहे थे। वहाँ पहली बार आंध्र प्रदेश के मशहूर जनगायक, गदर को देखा और सुना। बड़े बच्चों से कॉपी-पेन साथ में रखने को कहा गया था। बच्चों ने नए लोगों के नाम-पते लिखे और उनसे कुछ बातें कीं। इस तरह मज़ा करते हुए हम लोग बम्बई घूमकर आ गए। बच्चों ने बहुत कुछ देखा और सुना। वे दुनिया देखकर आ गए!

नाटक का सामूहिक सृजन व टीमवर्क

वर्ल्ड सोशल फोरम के लिए नाटक बनाते समय एक विधा विकसित हुई, जिसे हमने बाद के सभी नाटकों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया। असल में, शिक्षा का पहला नाटक भी ऐसे ही बना था, लेकिन इस बार हमने उसे और व्यवस्थित तरीके से तैयार किया। पहले बच्चों को निजीकरण आदि का मुद्दा समझाया गया, और उनसे गाँव पर इसके असर के बारे में पूछा। बच्चों ने कई उदाहरण सोचे। उसी समय गाँव में कहीं-कहीं मज़दूरों के बदले बुलडोज़र से काम होना शुरू हो गया था। बच्चों के लिए यह एक बहुत आकर्षक चीज़ थी। इसके अलावा, व्यक्तिवादी व्यवहार के बारे में बहुत सारे उदाहरण आए कि कैसे सामूहिकता और एक-दूसरे की मदद



करने के व्यवहार में कमी आई है। विज्ञापनों की भी बात हुई। एक बच्चा अखबार से एक कुपोषित महिला की फोटो लेकर आया। असल में, वो बिकिनी पहने हुए एक मॉडल का फोटो था जिसे बच्चों ने तिनटुकिया नाम दिया। तिनटुकिया वाला किस्सा नाटक में भी आ गया। बच्चे जो भी बातें बताते, उसे नाटक के माध्यम से भी दिखाते। धीरे-धीरे कुछ दिनों में बहुत-से सीन बन गए। इन्हें क्रम में पिराने का काम साथ-साथ होता रहा। रोज़ कोई नया सीन जुड़ता और क्रम बदल जाता था।

हमारे हर नाटक में, समस्या दिखाने के बाद, उसके निदान को लेकर कुछ सुझाव जरूर होते थे। यह स्थिति कैसे बदली जा सकती है, इस पर भी बच्चे विचार करते थे। बच्चों के साथ किसी भी विषय पर बातचीत करने के लिए नाटक एक बहुत

अच्छा माध्यम बना। नाटक का फायदा यह था कि बातचीत हवा में नहीं होती थी बल्कि आदिवासियों की ज़िन्दगी में जो चल रहा था, उसके उदाहरणों पर आधारित होती थी। साथ ही, नाटक के डायलॉग भी घरों में चलने वाली बातों पर आधारित होते थे।

इस नाटक के लिए स्कूल के सब बच्चे और शिक्षक काम में लग गए थे। बहुत-से कॉस्ट्यूम और प्रॉप्स बने। सबने अपने-अपने डायलॉग लिखे और उन्हें क्रम से जोड़कर पूरी स्क्रिप्ट तैयार की गई। शिक्षकों के साथ दो-तीन बड़े बच्चों को मैनेजर बनाया गया जो कलाकारों को समय-समय पर प्रॉप्स देते रहते थे। इस नाटक में बेमिसाल टीम वर्क देखने को मिला – इतने बड़े मैदान में छोटे बच्चों को बड़ों द्वारा सम्भालना, एक-साथ रहना ताकि कोई खो न जाए।

हर कदम पर बहुत सावधानी की ज़रूरत थी।

अनुभव से सीखने की प्रक्रिया

आलीराजपुर में रहते हुए हमने क्यूबन शिक्षा व्यवस्था पर एक किताब पढ़ी थी। उसका एक आइडिया जो हमें याद रह गया, कि गाँव का स्कूल एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ गाँव में चल रहे हर काम के बारे में नवाचार के प्रयोग हो पाएँ – a school should be a fountainhead of new ideas.

इस आइडिया के चलते, हम स्कूल में वह सब करने की कोशिश करते, जो गाँव में मौजूद होता है जैसे जानवर पालना, खेती करना, मुर्गी पालन, चूल्हे पर ज्वार-मक्के की रोटी बनाना आदि। इन सब कामों को नवाचार के साथ किया जाता था। इसके अलावा, गाँव की समस्याओं से बच्चों को जोड़ना, हमने स्कूल की पाठ्यचर्या का एक प्रमुख सिद्धान्त बना दिया था। इसके लिए समय-समय पर बड़े बच्चों के साथ बातचीत भी होती रहती थी। अलग-अलग विषयों को समझने के लिए सर्वे व गाँव के लोगों से भी बहुत सारी बातचीत होती थी। नाटक बनने की इस प्रक्रिया में विषय सम्बन्धित मुद्दों को समझने की दृष्टि से, और उनसे जुड़ाव बनाने के लिए बच्चों से बहुत सहज रूप से बात हो जाती थी। चूँकि नाटक के विषय अमूमन स्थानीय समस्याओं पर ही आधारित होते थे,

बच्चों को नाटक के माध्यम से ग्रामीण जीवन के बारे में सोचने का भरपूर मौका मिलता था।

नाटकों का लोगों पर प्रभाव

नाटकों को गाँव में दिखाना भी एक काम बन जाता था। ऐसे तीन नाटक बने जिन्हें गाँवों में घूम-घूमकर दिखाया गया। कुपोषण, महिलाओं पर घरेलू हिंसा व ग्राम सभा पर बने नाटकों को कुल मिलाकर 25-30 गाँवों में दिखाया गया। एक दिन गाँव का एक आदमी मिला जिसने कहा, “अरे, बच्चों की बात सुनकर मैंने अपनी पत्नी पर चिल्लाना बन्द कर दिया। बहुत अच्छी बात बता रहे थे बच्चे।” इस आदमी ने रात को प्रदर्शित किए गए नाटक में बच्चों की बात सुनी थी। नाटक का नाम था ‘गाड़ान दुई चाकटा’ - गाड़ी के दो पहिए। इस नाटक में एक आदमी की कहानी बताई गई थी। जब उसकी पत्नी अपने पति द्वारा पिटाई से नाराज़ होकर मायके चली जाती है और जब उसे ही घर के सारे काम करने पड़ते हैं तब उसे पत्नी का महत्व समझ में आता है। दिनभर भागते हुए जब वह थक जाता है तो शाम को पत्नी के मायके जाकर उससे माफी माँगता है और वापिस घर लेकर आता है। (यह ज़रूर है कि केवल काम की दृष्टि से ही उसे पत्नी का महत्व समझ आया।)

नाटक रात को होता था तो गाँव



की महिलाएँ भी देखने आती थीं और हँसी से लोट-पोट हो जाती थीं। इसके डायलॉग भी बच्चों ने ही बनाए थे। जैसा वे सुनते थे, वैसा-का-वैसा मंच पर बोल देते थे। ऐसे डायलॉग सुनकर आदमियों को बहुत शर्म आई। यह नाटक बहुत हिट हुआ। इसमें महिला का किरदार एक लड़का निभाता था। नाटक के बाद, उसे सब महिलाएँ देखने आती थीं और बहुत हँसती थीं।

एक दिन कुपोषण विषय पर कठपुतली नाटक दिखाया गया। नाटक देखने के बाद, चर्चा के दौरान एक महिला ने बताया कि जैसा नाटक में दिखाया गया है, वैसे ही जब वो प्रेगनेंट थी और खाने के लिए फल आदि चीज़ें माँगती थी तो घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ कहती थीं कि आजकल की लड़कियाँ बहुत नखरे करती हैं। उनके ज़माने में तो औरतें

आठ-दस बच्चे पैदा कर देती थीं और सारे काम भी करती रहती थीं। उसके इतना बोलने पर, वहीं उसकी सास भी खड़ी हो गई और उनका आपस में झगड़ा हो गया। नाटक में, माँ बनने वाली महिलाओं को पोषक आहार देने की बात बताई गई थी और इस सम्बन्ध में पारम्परिक सोच को भी दर्शाया गया था। बच्चों को भी समझ में आया कि उनके जीवन में विज्ञान द्वारा सिद्ध की गई बातों का उपयोग है और वे जीवन के रोज़मर्रा के कामों से विज्ञान का जुड़ाव बना पा रहे थे।

कठपुतली नाटक की आठ दिवसीय कार्यशाला में बच्चों ने पहली बार कठपुतली देखी, उसे चलाना सीखा जिसमें हाथ और मुँह एक-साथ चलाने पड़ते हैं। इसके लिए ज़बर्दस्त तालमेल की ज़रूरत थी। कार्यशाला के लिए दो मशहूर कलाकारों को बुलाया गया था। बच्चे कठपुतली

बनाना भी सीख रहे थे। नाटक की स्क्रिप्ट भी बातचीत के माध्यम से साथ-साथ बनती जा रही थी। दो कठपुतली नाटक और बने - सफदर हाशमी का 'बाँसुरीवाला' और 'कद्दू में बैठकर एक बुढ़िया जंगल में कैसे जाती है'। छोटे बच्चे तो इन्हें देखकर खुशी से अत्यन्त उत्तेजित हो जाते थे।

ग्राम सभा नाटक ने तो बहुत ही बवाल खड़ा कर दिया था। ग्राम सभा नाटक जिन लड़कों ने तैयार किया था, वे उस नाटक को देखने वालों की तुलना में ज्यादा जोश में आ गए थे। इस विषय पर आयोजित शिविरों का भी उन पर असर था। नाटक के दौरान एक बहुत आश्चर्यजनक बात पता चली कि कॉलेज जाने वाले अधिकतर लड़कों को ग्राम सभा के बारे में कुछ पता ही नहीं था। बहुत-से लड़के इसके बारे में पहली बार सुन रहे थे। उन्हें केवल इतना ही पता था कि नाना प्रकार के प्रमाण पत्रों के

लिए पंचायत के सरपंच और पंचायत सचिव के हस्ताक्षर लेने पड़ते हैं। उन्हें यह बिलकुल नहीं मालूम था कि गाँव की योजनाएँ ग्राम सभा में बनाई जाती हैं, और यह भी वहीं तय होता है कि किसको योजना का लाभ मिलेगा। लड़के जोश में आकर पहली बार ग्राम सभा की मीटिंग में पहुँचे। उन्होंने देखा कि दो-चार लोग ही मीटिंग में बैठे हैं जबकि साल में चार दिन इन ग्राम सभाओं में गाँव के समस्त वयस्कों को इकट्ठा होना चाहिए। लड़कों को देखते ही सरपंच और मंत्री बिदक गए। लड़कों ने अपनी माँगें रखीं और उनके बीच तना-तनी हो गई। एक गाँव में तो हाथापाई तक की नौबत आ गई थी। नाटक में दर्शाए गए दृश्य हकीकत में बदल गए।

इसी तरह एक नाटक स्वास्थ्य की स्थिति पर बना जिसे जन स्वास्थ्य अभियान के एक कार्यक्रम में दिखाया गया। इस नाटक के मंचन में भारत



के नक्शे पर सैलाइन की बोतल को लटका दिया गया था, जिसे देखकर दर्शकों को बहुत मज़ा आया। साथ ही, सन्देश भी बहुत स्पष्ट मिला।

लोक शिक्षण में नाटक की शुरुआत

इन सब घटनाओं से नाटक की शैक्षणिक भूमिका स्पष्ट होती है। इस समय यह बता देना उचित होगा कि *आधारशिला* हालाँकि बच्चों की शिक्षा के लिए ही जाना जाता है लेकिन इसकी कहानी वयस्कों के शिक्षण से शुरु हुई थी। 80 और 90 के दशक में आलीराजपुर में खेडुत मज़दूर चेतना संगठ (खे.म.चे.स.) के माध्यम से चेतना जागृति के काम में लोक शिक्षण हमारा मूल काम था। उस समय प्रौढ़ शिक्षा पर बहुत ज़ोर था। प्रौढ़ शिक्षा के बहुत-से प्राइमर प्रचलित थे लेकिन वे सब पढ़ाई-लिखाई से सम्बन्धित थे। खे.म.चे.स. का शिक्षण लिखाई-पढ़ाई वाला नहीं था। वह तो हकों के बारे में, कानूनों की जानकारी, आदिवासियों के शोषण को समझना, समाज में व्याप्त विभिन्न असमानताओं को समझना और इन सब हालातों को बदलने के तरीके सोचने के बारे में था।

पॉलो फ़ेअर की किताब *पेडागॉजी ऑफ़ द ऑप्रेस्ड* की बातें हमें बहुत काम की लगती थीं। लोगों के साथ वार्तालाप इसका एक मुख्य तरीका था। इस वार्तालाप के लिए नाटक का उपयोग हम वहाँ भी करते थे। उसमें

रोल प्ले अधिक होता था। अपने जीवन की व्यथा और खुशियों को मंच पर, अपनी भाषा में देखते-सुनते समय लोग आइने में एक तरह से अपना जीवन देख रहे होते हैं। तब वे इसे एक बाहरी व्यक्ति की तरह देखकर, इस पर विचार करने के लिए प्रेरित होते हैं। चूँकि नाटक इंडिया कम्पनी के कलाकार आदिवासी बच्चे और युवा होते थे, इसलिए नाटक के विषय भी अमूमन उनके जीवन के ही विषय होते थे। इसलिए वे भी इन मुद्दों के बारे में सोचने के लिए बाध्य हो जाते थे। जागृति के काम का यह एक बेहतरीन तरीका है जिसमें लोग अपने जीवन के बारे में बात करते हैं और इन बातों को करते व सुनते हुए जो पीड़ा या गुस्सा महसूस होता है, उसी से कोई रास्ता निकालने की प्रेरणा पैदा होती है।

मज़ा बनाम अनुशासन

नाटक इंडिया कम्पनी में विषय आधारित स्क्रिप्ट विकसित करने में तो हमने मास्टरी हासिल कर ली थी। विभिन्न तरह के नाटक देखने की वजह से मंच सज्जा और सीन के कॉम्पोज़िशन आदि का कुछ अन्दाज़ा तो हम दोनों को था ही। पूना और दिल्ली में देखे हुए नाटकों की छवियाँ तो हम दोनों के दिमाग में ज़रूर थीं, लेकिन हमें लगा कि यदि कुछ रंगकर्मियों को बुलाकर बच्चों को

प्रशिक्षित कर दिया जाए तो कलाकारी पक्ष और मज़बूत हो जाएगा जो अक्सर थोड़ा कमज़ोर रह जाता था। इसके लिए सबसे पहले हमने 'थिएटर इन एजुकेशन' से जुड़े कुछ साथियों को बुलाया जिन्होंने बच्चों के साथ एक पूरा सप्ताह बिताया और पूरे स्कूल के बच्चों को बहुत ही खुश कर दिया। बच्चों से नाटक से सम्बन्धित बहुत-सी एक्सरसाइज़ करवाई गई। इससे बच्चों ने अपने शरीर को नाटक में इस्तेमाल करना सीखा। आत्मविश्वास और खुलकर बात करना तो इन गतिविधियों से बच्चों में आ ही जाता है। उस समय पर्सनैलिटी डेवेलपमेंट के लिए नाटक की विधियों का प्रयोग आम चलन में नहीं था।

बाद में, अलग-अलग लोगों ने आकर बच्चों के साथ नाटक बनवाए जिसके तहत इन्दौर के रंगकर्मी और कलकत्ता के स्वभाव ग्रुप के साथियों ने भी आकर बच्चों से नाटक करवाया। भोपाल से एन.एस.डी. जाकर पढ़े छात्रों ने भी नाटक में मदद की। यह करते हुए हमें समझ में आया कि जिन लोगों के लिए नाटक एक प्रोफेशन होता है, वे इसे लेकर बहुत गम्भीर होते हैं। रिहर्सल के दौरान हँसी-मज़ाक और मज़े की कोई भूमिका नहीं होती। एक प्रतिष्ठित नाटककार के शिविर में तो बहुत-से बच्चे रो दिए। कई बच्चे नाटक क्लास से भाग जाते। फिर हम उन्हें समझा-

बुझाकर क्लास में वापिस भेजते। नाटक तो बन गया लेकिन मज़ा नहीं आया। कहाँ तो बच्चे नाटक में भाग लेने के लिए बेताब रहते थे और अब वे नाटक से भागने लगे थे। स्कूल के समय नाटक के लिए रिजेक्ट होने के हमारे बुरे अनुभवों के कारण, हमारा यही प्रयास होता था कि अधिक-से-अधिक बच्चे नाटक में भाग ले सकें।

असल में, हम दोनों को बहुत-से काम खुद से करने की आदत थी। सृजनात्मकता के काम करने में मन भी लगता था और काम हो भी जाते थे। सृजनात्मक माता-पिता होने के कारण - घर सजाना, पत्रिका निकालना, रंगोली बनाना, नाटक, संगीत, क्राफ्ट, कपड़ा सिलाई, तरह-तरह के व्यंजन बनाना - बीसियों कामों का अनुभव था। हमें ऐसा खयाल भी नहीं आता था कि किसी काम को करने के लिए कोई प्रोफेशनल चाहिए ही है। जो भी हो, हम उसमें भिड़ जाते थे। शुरुआती दिन तिलोनिया के 'समाज कार्य एवं अनुसंधान केन्द्र' में बिताने के कारण भी हमें यह समझ में आया कि जो लोग व साधन उपलब्ध हैं, उन्हीं से काम ले लो। वहाँ के निदेशक बंकर रॉय का अटूट विश्वास था कि स्थानीय लोग सीखकर सब कुछ कर सकते हैं। उस संस्था में कोई भी काम किसी मध्यमवर्गीय प्रोफेशनल के न होने के कारण नहीं रुका। हमें यह बात बहुत सही लगी। बहुत बार लोग



हमसे पूछते थे कि क्या हमारे पास समाज कार्य करने की कोई डिग्री है?

एक बार एक बुजुर्ग नाटककार मित्र को तो बुरा ही लग गया जब हम अपने नाटक की कहानी बच्चों के साथ मिलकर बनाने की बात उन्हें बहुत जोश में बता रहे थे। उन्हें यह गवारा ही नहीं हुआ कि कोई भी नौसिखिया नाटक बना सकता है, वो भी ऐसी विधि से जिसे वे इम्प्रोवाइजेशन के नाम से जानते थे। नाटक की दुनिया में भी इसे गिने-चुने लोग ही करते थे और वे इसमें बहुत तुर्रम खाँ माने जाते थे।

आदिवासी संघर्ष व एकता की गूँज

खैर, एक और नाटक की बात

करके हम बात को खत्म करेंगे। पश्चिम भारत की आदिवासी पट्टी चार राज्यों में बँटी हुई है - महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और राजस्थान। हर साल 13 जनवरी को इन चार राज्यों के आदिवासी बड़ी संख्या में आदिवासी सांस्कृतिक महासम्मेलन के लिए इकट्ठा होते हैं। यह सम्मेलन बारी-बारी से, चारों राज्यों में होता है। उस साल यह सम्मेलन हमारे बहुत पास के सेंधवा शहर में होना था। हमने आयोजकों से कहा कि हम लोग बच्चों का एक नाटक लाना चाहते हैं। सम्मेलन में नाटक तो पहले कभी नहीं हुआ था, लेकिन सांस्कृतिक कार्यक्रम में नाटक दिखाने की अनुमति मिल गई। बस, फिर क्या था।

हम सब नाटक की तैयारी में लग गए। लगभग 15-20 दिनों तक तैयारियाँ चलीं।

नाटक शुरू होते ही जमूरे ने मंच पर आकर ऐलान किया - भारत की मशहूर नाटक इंडिया कम्पनी आपके सामने पेश कर रही है, आदिवासी जीवन की झलकियाँ दिखाता नाटक - 'हम कहाँ जा रहे हैं?'। नाटक के पहले भाग में पुरानी आदिवासी जीवन की झलकियाँ दिखाई गईं जिनमें लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं, सामूहिकता है, एकता है, जड़ी-बूटियों का ज्ञान है। दूसरे भाग में आदिवासियों पर अलग-अलग खिंचाव दिखाए गए। एक तरफ राजनीति खींच रही है तो दूसरी तरफ धर्म। एक तरफ बाज़ार खींच रहा है तो दूसरी ओर शराब। कुल मिलाकर, यह दर्शाया गया कि कैसे इन सबके कारण समाज में टूटन हो रही है। अन्तिम भाग में आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों को याद करते हुए दर्शकों को यह सोचने के लिए उकसाया गया कि कैसे हमें फिर से समाज के महत्वपूर्ण एवं प्रगतिशील मूल्यों को स्थापित करना है और एकता से रहना है।

यह नाटक सम्मेलन में बहुत हिट हुआ और अगले दो-तीन सालों तक इसे दिखाया गया। लेकिन अन्तर यह था कि दूसरे साल से इसे *ऑन डिमांड* दिखाया गया। चूँकि यह नाटक स्थानीय भाषा में था और अन्य नाटकों की तरह इसके डायलॉग भी

गाँव के लोगों के मुहावरों से ही बने थे, लोगों को इसके डायलॉग रट गए। बहुत-से लोगों ने बताया कि जो बातें दिनभर के लम्बे-लम्बे भाषणों से नहीं समझ आईं, वे बातें बच्चों ने एक नाटक के ज़रिए सबके दिमाग में फिट कर दीं। विभिन्न सम्मेलनों के दौरान एक लाख से अधिक लोगों ने इस नाटक को देखा।

इन सभी नाटकों के लिए बच्चों ने कॉस्ट्यूम बनाए, प्रॉप्स बनाए और डायलॉग भी लिखे। एक बड़े लड़के ने लाइटिंग की व्यवस्था की। एक सीन में रंगीन लाइट फेंकने की जुगाड़ की। जानवरों और इन्सानों के मास्क बनाए गए। सालभर चलने वाली क्राफ्ट क्लास के सारे गुर यहाँ काम आ जाते थे। इसके चलते कुछ बच्चे सिलाई मशीन भी चलाना सीख गए। नाटकों में पार्श्व संगीत देने के लिए, मोबाइल में एक क्रम से गीत व आवाज़ें रिकॉर्ड करके निश्चित समय पर बजा दिए जाते थे। दो-तीन तकनीकी दिमाग वाले लोग इसकी तैयारी करते थे। जंगल के दृश्य में चिड़ियों की आवाज़ें ज़रूर सुनाई देती थीं।

फण्ड रेज़िंग का ज़रिया भी

आधारशिला लर्निंग सेन्टर छह एकड़ ज़मीन पर बना हुआ था और यहाँ लगभग 150 से 200 बच्चे रहते थे। जैसा पहले भी एक लेख में बताया जा चुका है, इसके 22 वर्षों के

जीवनकाल में इसे चलाने के लिए कभी संस्थागत पैसे नहीं लिए गए। यह बच्चों के माता-पिता द्वारा दी गई फीस, दाल, अनाज व लोगों की मदद से चलता था। आर्थिक मदद गाँवों से भी मिलती थी और शहरों में रहने वाले लोगों से भी। बच्चे क्राफ्ट का सामान बनाते थे, जिन्हें



बेचकर भी कुछ पैसे इकट्ठे किए जाते थे। ज़्यादा ज़मीन लेने का मकसद भी यही था कि इस पर जैविक विधि से सब्जियाँ उगाई जाएँ। हम हर वक्त यही विचार करते रहते थे कि इस जगह को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी कैसे बनाएँ।

इसमें नाटक की भी एक भूमिका थी। जब सम्मेलनों में नाटक ले जाते थे तो नाटक के तुरन्त बाद लोग खुश होकर इनाम देते थे जिसकी घोषणा माइक पर की जाती थी। एक नाटक में 8 से 15 हज़ार रुपए तक इनाम मिल जाता था। साथ ही, हम लोग सम्मेलन में बची हुई सामग्री को स्कूल के लिए ले आते थे। इसमें लकड़ी, चावल, दाल, राशन आदि मिल जाता था। एक बार एकलव्य संस्था की मदद से, भोपाल के एक प्राइवेट स्कूल में नृत्य नाटिका की

प्रस्तुति करके बच्चों से रद्दी लाने की गुज़ारिश की गई। इसमें कमरा भर के रद्दी इकट्ठी हो गई जिसे बेचकर मिले पैसे को स्कूल के लिए इस्तेमाल किया गया। रद्दी के साथ-साथ बच्चों के घरवालों ने और भी कुछ सामान दे दिए थे। इसके अलावा, दो साल तक नाटक टीम को उन गाँवों में भेजा गया जहाँ से बच्चे आते थे। वहाँ उनके घरवालों को और संगठन के कार्यकर्ताओं के माध्यम से गाँव के समस्त लोगों को बच्चे रात में नाटक दिखाते थे, गीत गाते थे और स्कूल के बारे में बताते थे। अन्त में कहते थे कि सवेरे हम आपके घर आएँगे, आप जो भी देना चाहें, दे दीजिएगा। बच्चे पूरे गाँव में थैले लेकर घूमते थे और लोग उन्हें कुछ अनाज-दाल दे देते थे। यह स्कूल संगठन द्वारा बनाया गया है, इस बात

को लोग जानते थे, और कार्यकर्ता भी साथ में रहते थे इसलिए लोग खुशी से कुछ-न-कुछ दे देते थे। गाँव में बहुत तरह के लोग माँगने आते थे। उनमें हमारा भी नाम जुड़ गया।

* * *

आप सोच रहे होंगे कि यह कब बताया जाएगा कि नाटक का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है।

चलिए, मास्टर्स के अन्दाज़ में आपको भी होमवर्क दे देते हैं। इस लेख में जो बताया गया है, उसके आधार पर सोचिए कि यह सब करते हुए बच्चों ने क्या-क्या सीखा होगा और उसकी सूची बनाइए। आपको अपने आप ही शिक्षा में नाटक का महत्व समझ में आ जाएगा। वैसे बी.एड. के छात्रों के लिए यह बहुत अच्छी गतिविधि होगी। यह भी अध्यापन की एक पुरानी विधा है - जब शिक्षक थक जाए या पढ़ाने का मन न हो तो बच्चों को करने के लिए कुछ काम दे दो। लेकिन मज़ाक से हटकर, यदि आप सच में इस लेख से एक सूची बनाएँगे कि बच्चों ने नाटकों के दौरान क्या-क्या जाना और क्या-क्या करना सीखा, तो आप

भी अचम्भित रह जाएँगे। और यह भी पता चल जाएगा कि किन बातों को आप 'सीखना' समझते हैं और कौन-से काम आपने लिस्ट में नहीं डाले। लिस्ट बनाकर हमसे भी साझा करें। लिस्ट में यह ज़रूर लिखिएगा कि नाटकों के कारण बच्चों को *आधारशिला* में बहुत खुशी और हँसने के मौके मिले। यह बहुत ज़रूरी है। बच्चों को खुशी देना, अपने आप में बहुत बड़ा काम है।

“नाटक का पर्दा यहीं गिराते हैं। अब आप लोग ताली बजा सकते हैं। और यदि आप लोग *आधारशिला* के बारे में और जानना चाहते हैं, या इसे किसी भी तरह से सहयोग करना चाहते हैं, या अपने इलाके में ऐसा स्कूल खोलना चाहते हैं तो हमसे सम्पर्क करें। नम्बर नोट कर लें - जयश्री- 8889289196. अमित-8527803272.” प्रत्येक नाटक के अन्त में यह डायलॉग बोला जाता था क्योंकि पर्दा तो होता ही नहीं था!

इसी *आधारशिला* का आधारभूत ढाँचा अब प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में काम करता है और सबके लिए उपलब्ध है।

अमित और जयश्री: लगभग तीन दशकों से पश्चिम मध्य प्रदेश में भील, भीलाला और बारेलाला आदिवासियों के बीच में रह रहे हैं। साथ ही, खेडुत मज़दूर चेतना संगठ, नर्मदा बचाओ आन्दोलन व पश्चिम भारत प्रवासी मज़दूर संघ के साथ-साथ आदिवासियों के अन्य संघर्षों के साथ भी खड़े हैं। 1998 से आदिवासी बच्चों व युवाओं की शिक्षा के लिए काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: आधारशिला शिक्षण केन्द्र।